मिथिला में लोककला एवं चित्रकला की विशेषताएँ

डॉ0 राकेश कुमार राय
एम0 ए0, पी0–एच0 डी0
इतिहास विभाग
ल0 ना0 मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

कला के क्षेत्र में मिथिला का इतिहास काफी समुन्नत रहा है। स्थापत्यकला, चित्रकला, ललित कला आदि के क्षेत्र में मिथिला की पहचान सदियों से कायम रही है। मिथिला में स्थापत्य कला के विकास का पता नृपतियों एवं स्मृद्धिशाली नागरिकों द्वारा निर्मित अनेकानेक मन्दिरों तथा वहाँ स्थापति सुन्दर मूर्तियों के बाहूल्य से होता है। मिथिला के सभी नृपतियों ने देव मेदिरों का निर्माण अपने शासन काल में कराया था। राज प्रासादों एवं भावनों का निर्माण सम्भवतः तभी किया जाता था जब उनके राजधानियों का स्थानान्तरण किया जाता था। मिथिला के देव मंदिरों के निर्माण की कला को देख कर तथा जाँचकर पुरातत्व के पंडित डा0 स्पूनर ने उसका नामकरण ''तिरहुत मंदिर निर्माण स्थापत्य कला'' किया था।[1] यहाँ की प्रचलित प्रसिद्धि के अनुसार मंदिर के नीचे का मुख्य मार्ग वर्गाकार होता था, जिसमें चबुतरे होती थी। शिवलिंग की स्थापना के लिए मंदिर के मध्य में अर्धा के निर्माण का आयोजन होता था।[2] मंदिर की दिवारें कुछ उॅचाई तक लम्बा रूप में उठकर भीतर की ओर मुड़ती और सिकुडंती हुई अंत में नुकीला रूप धारण करती थी, जिसके उपर धातु निर्मित सुन्दर और चमकीले कलशों की स्थापना की जाती थी।

मंदिरों के प्रवेश द्वार से संलग्न एक गोपुरम् का निर्माण किया जाता था, जिससे होकर अर्चक देव मंदिर में स्थापित देव मूर्ति तक पहुँचते थे।[3] मंदिरों के विस्तार के अनुसार गोपुरों में बैठकर दर्शनार्थी एवं पुजारी यदा–कदा वर्षा, ताप से अपनी रक्षा करते थे। वहॉ बैठकर कभी–कभी सामने कीर्त्तन या भजन किया जाता था तथा शास्त्र–पुराणों की पवित्र कथायें कही जाती थी। मंदिरों की छते कहीं–कहीं सीधी तथा चूने और ईट और कहीं–कहीं छप्पर द्वारा मंदिरों के भीतरी दिवारें पर था तथा उन पर चित्रकारी भी की जाती थी। संक्षेप में जा सकता है कि उसका आकार वर्गाकार होता था तथा दिवारें और छतें चिकनी, साफ और बराबर होती थी, जिस पर साधारणतया चित्रों का चित्रण किया जाता था और अधिक काष्ठ के बनाये जाते थे, जिस पर सुन्दर कलापूर्ण लता गुल्फों, पशु–पक्षियों राजाओं तथा देवताओं के आकार उत्कीर्ण रहते थे। इस प्रकार के नक्काशीदार चौखटों के अनेक प्रस्तर खंड प्राप्त हुए है जिनसे उस काल की वास्तु विकास पर सभ्यक प्रकाश पड़ता है।[4]

उपर्युक्त प्रकार के मंदिरों का अवशेष कहीं सुरक्षित दशा में और कहीं खंडहर के रूप में स्थापत्य कला का दिग्दर्शन आज भी कराता है। सिंगराजोगढ़ सम्प्रति नेपाल का कंकाली देवी मंदिर, दरभंगा जिले के अहियारी ग्राम के अहिल्या स्थान का राम मंदिर, मधुबनी के निकट सौराठ ग्राम का महादेव स्थान, मुजफ्फरपुर जिले के सूर्यगढ़ का भगवती मंदिर, गरीबनाथ मंदिर आदि मिथिला मंदिर, निर्माण कला के जीते–जागते प्रतीक दृष्टिगोचर होते है। इसके साथ जानकी मंदिर (जनकपुर) जानकी मंदिर (सीतामढ़ी), शिलानाथ मंदिर (जयनगर) कल्याणेवर महादेव (मधुबनी), उच्चैठ भगवती मंदिर (मधुबनी), भद्रकाली मंदिर (कोईलख), भुवनेश्वरी मंदिर (मधुबनी), कुशेश्वर महादेव मंदिर (दरभंगा), जयमंगला भगवती मंदिर (बेगुसराय), सिंघेश्वर महादेव (मधेपुरा) आदि भी मंदिर निर्माण कला के प्रतीक है।[5]

भारत में मुसलमानों के आगमन के पश्चात् धीरे–धीरे हिन्दू और मुस्लिम संस्कृति में सम्पर्क देखने को मिला। 19वीं शताब्दी मे मुहर्रम के अवसर पर विशेषकर शिया सम्प्रदाय के मुस्लिम बाँस की कमचियों एवं रंग–बिरंगी कागजों के संयोग से मकबरे के आकर का मंडप बनाते थे। ऐसी धारणा थी कि यह इमाम हुसैन कब्र है।[6] इमाम हुसैन के अनुयायी उसकी आराधना करते थे और फिर उसे दफनकर देते थे। मुस्लिमों के तजिया निर्माण पर भी मंदिर निर्माण स्थापत्य कला का प्रभाव पड़ा और उसकी बनावट में धीरे–धीरे परिवर्तन होने लगा। तजिया मिथिला के गाँव–गाँव में बनता था तथा उसका रूप विशेषतया हिन्दू मंदिरों के समान हीं होता था। महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह के पिता के समय सड़कों एवं पुलों की स्थिति अच्छी नहीं थी। मिथिला के राज भवन की अवस्था प्रायः भग्न अवस्था में थी।[7]

राज भवन का क्षेत्र जंगली और गंदगियों से भरा –पड़ा था, उस समय यात्रियों के ठहरने का लिए अच्छी सराय की व्यवस्था नहीं थी। दरभंगा जिले में एक भी अच्छे स्कूल नहीं थे। इस प्रकार ऐसा कहा जा सकता है कि महाराजा महेश्वर सिंह के समय मिथिला में सृजनात्मक कार्यो की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया था। परन्तु महाराजा महेश्वर सिंह के मृत्यु के बाद उनके दो पुत्र लक्ष्मीश्वर सिंह और रामेश्वर सिंह नावालिंग थे और इसी कारण से दरभंगा राज 'कार्ट ऑफ वार्डस'

के अधिन आ गया था।[8] यद्यपि वार्डस प्रशासन के समय मिथिला के लोगों पर कर का बोझा अधितम किया गया, फिर भी इस दौरान दरभंगा राज के अन्तर्गत कई सृजनात्मक कार्य हुए। वार्डस प्रशासन ने करीब दो सौ मील लम्बी सड़क का निर्माण करवाया एवं कई स्थानों पर पुलों का निर्माण करवाया।[9] अधिकारियों ने मुख्य सड़क से गॉवों की ओर जाने वाली छोटी–छोटी बहुत सी सड़को का निर्माण किया । इसके अतिरिक्त दरभंगा में एक बड़े बाजार का निर्माण करवाया गया। जिसके अन्तर्गत एक सुन्दर सराय की भी व्यवस्था की गई।[10]

वस्तुतः यह 19वीं शताब्दी के सांस्कृतिक उत्कृष्टता का ही द्योतक है कि वार्ड प्रशासन ने दरभंगा राज भवन को बनाने तथा उसे सुसज्जित करने का कार्य किया। इस दौरान एक राजमहल का निर्माण किया गया जिसका आम दरवार 130 फीट लम्बा था तथा इसकी बनावट एवं फब्बीकारी स्थापत्य कला की सर्वोत्कृष्ट मिशाल थी।[11] इसके साथ–साथ 50 एकड़ भूमि को घेरते हुए विशाल चाहरदिवारी बनायी गयी जिसके अन्तर्गत सुन्दर सड़कें, खेल का मैदान, विलिवर्ड क्रिड़ागृह, स्नानागार, हरिणगृह फब्बारे आदि निर्मित हुए। इन सभी वस्तुओं में कला की खुबसुरती और सुरूचिका पर ध्यान रखा गया। दरभंगा राज के मैनेजर तथा अन्य कर्मचारियों के रहने के लिए सभी कलात्मक सुविधाओं से संपन्न अलग–अलग भवन बनाये गये।[12] इतना ही नहीं हाथियों एवं घोड़ों को रहने के लिए हथसार एवं अस्तवल का निर्माण कराया गया। अस्पताल एवं स्कूल के भवनों का निर्माण भी वृहत पैमाने पर कराया गया। इस प्रकार वार्डस् प्रषासन द्वारा कुशल इंजिनीयर एवं स्थापत्य कलाविद के द्वारा सभी कार्य सम्पादित किये गये।[13]

महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह के सिंहासनारूढ़ होते ही मिथिला के स्थापत्य कला के विकास की ओर विशेष ध्यान दिया गया। उनके द्वारा निर्मित 'आनन्दबाग' राजभवन एक दर्शनीय महल है जिसकी कलाकृति देखने योग्य है।[14] महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने दरभंगा में लेडी डफरीन अस्पताल भवन तथा विभिन्न गाँवों में रैयतों के लिए छोटी–छोटी डिस्पेंशनियों के लिए भी भवन निर्माण कराया। महाराजा ने एक राज हाई स्कूल दरभंगा के नाम से प्रसिद्ध हुआ।[15] मिथिला जनता में भी स्वेच्छा से अपनी आवश्यकतानुसार भवनों का निर्माण करने की प्रवृति जगाई। उपर्युक्त सभी भवन पक्की ईट तथा सुरखी चूने एवं उत्तम कोटि के लकड़ियों के सहयोग से बनते थे, जो अत्यन्त कलात्मक एवं सुन्दर प्रतीत होते थे। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्ध की स्थिति को ध्यान से रखते हुए यह कहा जा सकता है कि महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह ने अपने राज्य में अपनी सुरूचि के अनुकूल स्थापत्य कला का समुचित विकास कराया। 19वीं शताब्दी में कुछ भवन अंग्रेजों के द्वारा भी बनाये गये। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने 'क्लोनीयल' शैली के भवनों का निर्माण कराया। रानी बिकटोरिया के शासन काल में भारत में पब्लिक देख–रेख में अनेक ईमारतें पश्चात्य शैली के आधार पर दौरान मिथिला में पश्चात्यय स्थापत्य कला को भी विकसित होने का विशेष प्रोत्साहन मिला।

मिथिला का चित्रकलाः

19वीं शताब्दी के दौरान मिथिलाके ब्राह्मणों एवं कायस्थों के सांस्कृतिक जीवन का एक अंग उसकी चित्रकला भी है। घर–द्वारा, वर्तन–वासन, बैना–पंखा, दौरी–मोनी, डगरा–सूप आदि सभी वस्तुओं तथा पूजा–अर्चना की पद्धतियों में जहाँ भी देखा जाय वहीं ललित चित्रकला का विकास मिथिला के ब्राह्मण एवं कायस्थ परिवारों में प्राचीन काल से आजतक लक्षित हो रहा है। यज्ञोपवित, चूराकरण, विवाह आदि शुभ संस्कारों के समय घर–द्वारों को चित्रकारी से सजाना मिथिला की परिपाटी थी और है। इन अवसरों पर बाँस, मूज व सीकी की बनी दौरीयों पर नाना प्रकार के रंगों से चित्र बनाये जाते थें और यह प्रथा अब भी प्रचलित है। सौभाग्यशाली शिशुओं के जन्मों पर ब्राह्मणों के द्वारा बच्चों का जन्म पत्रियों ज्योतिष गणना के अनुसार प्रस्तुत करवाने तथा यज्ञोपवित विवाह आदि शुभ संस्कारों के समय कायस्थों द्वारा आमंत्रण पत्र देवताओं, वृक्ष–लताओं, मांगलिक पशु–पक्षी, पक्षियों आदि के मनोहर आलेख अंकित रहते थे। यह प्रथा आज भी मिथिला देखी जाती है। विवाह के समय वर के मस्तक पर धारण करने वाला मौर कोढ़िला का बना होता है तथा उसपर सिन्दूर चित्रकारी विशेषतया लाल रंग से की जाती है। यह प्रथा भी मिथिला में अद्यपर्यनत प्रचलित है। यज्ञों में हवन कुण्डों के चतुर्दिक तंडूल चूर्ण, सिन्दूर आदि से अस्थायी चित्र बनाना, घर–घर में प्रचलित था। यज्ञों पवित एवं विवाह हेतु प्रस्तुत किया गया मंडप भी अनेक प्रकार के मंगलिक चित्रों से चित्रित किया जाता था। पशु–पक्षी, बाँस–केला आदि के चित्र प्रस्तुत कर उसे सुशोभीत किये जाते थे।[16] दिवारों पर लेवा प्रायः कच्ची मिट्टी का होता था। विवाह के समय वर के माथे पर चंदन लगाने में भी चित्रकला का प्रदर्शन होता था तथा उत्सव में भी चित्रकला का प्रदर्शन होता था तथा उत्सव यात्राओं में सम्मिलित होने वाले हाथियों के माथे पर भी कलापूर्ण सुन्दर चित्र बनाकर उसे सजाया जाता था।

मिथिला में चित्र–चित्रण की प्रथा चिर काल से चली आ रही है। परन्तु वे चित्र कच्ची दिवार, कलश आदि पर बनाये जाते थे।[17] जिसका स्थायी रहना सम्भव नही था। यही कारण है कि 19वीं शताब्दी के दौरान मिथिला में की गई चित्रकारी आज प्राप्त नही है। परन्तु यह निर्विवाद है कि मिथिला में प्रचलित उपर्युक्त प्रकार की चित्रकारी अति प्राचीन

काल से हीं चली आ रही थी, जो यहाँ की संस्कृति का एक अंग बन गयी है।[18] इस प्रकार चित्र तो बनते और मिटते गये, परन्तु यह प्रथा अद्यावधि मिट नहीं सकी।

मिथिला 19वीं शताब्दी के दौरान चित्रकारी मिथिला की घरेलू कला था, जिसका सम्पादन मुख्यतया महिलाओं द्वारा होाता था। चित्रकारी के लिए अन्य स्थानों से चित्रकारों को नहीं बुलाया जाता था। यज्ञ के एवं भित्तिचित्र उतारती तथा उपकरणों को भी चित्रित करती थी।[19] समारोह की समाप्ति के पश्चात् वे पुनः अपने गृह कार्य में लग जाती थी आनन्द उत्सव काल मे चित्रों का चित्रण करना तथा करवाना गृहस्वामिनियों का परम कत्तर्तव्य होता था। परिवार में जब कभी भी उत्सव होता था तो घर की साधारण महिलायें कलाकार बनकर दिवारों पर चित्र खींचती थी। मिथिला की सुकुमारियों के लिए आनन्दोत्सव काल में चित्रों का चित्रण करना उतना हीं आवश्यक थी, जितना साधारण स्थिति में घरों में झाड़ू लगाकर उसे साफ–सुथरा रखना तथा तालाब पर जाकर पेयजल ले आना था। दिवारों पर चित्र बनाने की परम्परा के हेतु बाँस के पतली डाली के अग्रभाग को कुचल कर कुंची तैयार की जाती थी।[20] उसी कुंची से सममतल दिवारों पर चित्रों का चित्रण किया जाता थी। किसी रंग विशेष से दिवारों अथवा उपकरणों के बड़े भाग को रंगने अथवा पोतने हेतु बाँस की डाली द्वारा निर्मित डंडी के अगले भग में पटसन के रेसे बाँधकर अथवा उसमें कपडा लपेटकर पोतन प्रस्तुत कियर जाता था। तथा उसी के द्वारा आवश्यक रंग दिवारों पर पोता जाता थां बाँस की बनी पतली कुंची से चित्र की रेखों का अंकन किया जाता थी। उससे वृत्त, अर्धवृत्त, त्रिकोण, चतुष्कोण, पटकोण आदि बनाये जाते थे।[21] देवता, मानव, पशु–पक्षी, वृक्ष–लता आदि के चित्र भी चित्रों के प्राक्कलन प्रस्तुत किये बिना हीं चित्रों का चित्रण गृहनारियाँ कुंची और रंगों की सहायता से कर लेती थी। चित्रों का प्रस्तुत करने में लाल, गुलाबी, पीले, नीले, हरे आदि रंगों की आवश्यकता होती थी।[22] आज दुग्ध में रंगों को घोलनें की परिपाटी थी। चावल के महीन चूर्णों को जल में मिलाकर उजला रंग प्रस्तुत किया जाता था। सिन्दूर अथवा गेरू का व्यवहार लाल रंग के लिए होता थी। त्रिणपत्रों को जलाकर उसके चूर्ण से काला रेग बनाया जाता था। इन्हीं रंगों को कहीं–कहीं अकेले और कहीं–कहीं आवश्यकतानुसार मिश्रित कर चित्र बनाने एवे रंगने के काम में प्रयोग लाया जाता था।

मिथिला के धार्मिक कार्यों में उत्सवों के समय सीताराम, राधा–कृष्ण, शिव–पार्वती, काली, दुर्गा, गणेश आदि देवी–देवताओं के स्वरूपों का चित्रण किया जाता था तथा विवाह द्विरागमन आदि शुभ अवसर पर सूर्य, चन्द्रमा, मत्स्य कपोत, कच्छप, बाँस, कमल–पुष्प आदि के चित्र बनाये जाते थी।[23] इससे यह प्रतीत होता था कि सभी चित्रों में कुछ न कुछ अर्थ निहित होते थे। देवी–देवताओं के चित्र बनाकर मंगल कामना की जाती थी तथा ऐसे चित्रों को अंकित करना शुभ माना जाता था। कमल–पुष्पों तथा बाँसों के झुरमुट को स्त्री एवं पुरूषजन नैन्द्रियों का रूप माना जाता था।[24] तथा उससे वंश वृद्धि की कामना की जाती थी। पुष्प, कपोत आदि दाम्पतय प्रेम के द्योतक माने जाते थे तथा सूर्य–इन्द्र आयु की वृद्धि करने एवं जीवन देने वाले समझे जाते थे। आर्चर महोदय ने मिथिला के ब्राह्मण एवं कायस्थों के द्वारा बनाये गये चित्रों को मैथिल चित्रकला' का नाम दिया।[25] महाराष्ट्र के ऐलीफेंटा और अजन्ता की गुफाओं की दिवारों तथा छतों पर एवं राजस्थान के भवनों में, और भारत के अन्य हिस्सों में भी भित्ति चित्रों का बाहुल्य है तथा ये चित्र आज भी नवीन रूप में दिख पड़ते हैं। परन्तु मिथिला के मैथिल चित्रकला की यह विशेषता नहीं है। मिहिला के भित्ति चित्र दो चार वर्षो में ही फिके पड़कर अदृश्य हो जाते है। लेकिन अजन्ता की गुफायें पत्थरों को काटकर बनायी गई है जिसके फलस्वरूप वर्षो पूर्व के बने चित्र वहाँ अद्यावधि मिटे नहीं है। लेकिन मिथिला की चित्रकला इसके विपरीत है क्योंकि यहाँ के भवन कच्चे होते है तथा यहाँ की भूमि में आर्द्रता अधिक होती है।[26] कच्ची दिवारों पर बना चित्र नमी के कारण जल्द ही अदृश्य होता है। यही कारण है कि मिथिला के भित्ति चित्र शीर्घ ही अदृश्य और विवर्ण का रूप ग्रहण कर लेता है लेकिन इस बात को भुलाया नही जा सकता है कि मिथिला का भित्ति चित्र हमेशा से ही अपनी मौलिकता और नवीनता को उजागर करता है।

संदर्भ सूची :–

1. डॉ0 एम0 के0 ठाकूर – चन्दाझाक युग, पृं0– 140
2. डॉ0 एम0 के0 ठाकूर – चन्दाझाक युग, पृं0– 182
3. डॉ0 बालगोविन्द झा – मैथिली भाषा और साहित्य पृ0– 231–33
4. डॉ0 बालगोविन्द झा – मैथिली भाषा और साहित्य पृ0– 42
5. डॉ0 बालगोविन्द झा – मैथिली भाषा और साहित्य पृ0– 48
6. स्व0 रमानाथ झा – प्रबंध संग्रह – पृ0– 81–82
7. डॉ0 दिनेश कुमार झा – मैथिली साहित्यक आलोचनात्मक इतिहास पृ0– 111
8. श्री अमित कुमार हलदार – भारतीय चित्रकला पृ0– 50
9. श्री किशोरी लाल वैद्य – पहाड़ी चित्रकला, पृ0– 49–50

10. डॉ0 एम0 के ठाकुर – चन्दाझाक युग, पृ0– 127
11. डॉ0 सुनिती कुमार चटर्जी (सम्पादक) – वर्णरत्नाकर, पृ0– 20
12. डॉ0 सुनिती कुमार चटर्जी (सम्पादक) – वर्णरत्नाकर, पृ0– 22
13. डॉ0 जे0 एस झा – बिगीनिंग ऑफ मोडर्न ऐडुकेशन इन मिथिला पृ0– 12
14. डॉ0 जे0 एस झा – बिगीनिंग ऑफ मोडर्न ऐडुकेशन इन मिथिला पृ0– 14
15. डॉ0 इन्द्रकांत झा – हिज हाइनेस महाराजा लक्ष्मीश्वर सिंह नाम का लेख
16. डॉ0 दिनानाथ वर्मा – आधुनिक भारत, पृ0– 233
17. पं0 बलदेव मिश्र – संस्कृति, पृ0– 17
18. पं0 बलदेव मिश्र – संस्कृति, पृ0– 19
19. श्रमद्भागवत
20. श्री हजारी प्रसाद द्विवेदी – मध्यकालीन धर्म साधना, पृ0– 32
21. डॉ0 जयकान्त मिश्र –हिस्ट्री ऑफ मैथिली लिटरेचर, भाग– 1, पृ0– 19
22. महाभारत
23. आर0 जी0 भंडारकर – वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम, पृ0– 152
24. आर0 जी0 भंडारकर – वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलिजियस सिस्टम, पृ0– 153–54
25. डॉ0 उपेन्द्र ठाकुर – स्टडीज इन जैनिज्म एण्ड बुद्धिज्म इन मिथिला, पृ0– 27
26. ब्लदेव उपाध्याय – धर्म और दर्शन, पृ0– 23–28